P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-8* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

प्रेमचन्द कहानी साहित्य में धार्मिक, नैतिक व सांस्कृतिक संघर्ष चेतना

वंदना शर्मा
व्याख्याता
हिन्दी विभाग,
यूनिवर्सिटी ऑफ कोटा
कोटा, राजस्थान

सारांश

प्रेमचन्द युग में भारतीय धर्म और संस्कृति अपने पुरातन स्वरूप को खोकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी संस्कृति के समक्ष कुंठित हो रहे थे। धर्म पाखण्ड एवं कर्मकाण्ड का रूप धारण कर चुका था, नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हो रहा था। इस युग में धर्म अपने मूल स्वरूप को खोकर बाह्य आडम्बर युक्त हो चुका था। धार्मिक रूढ़ियाँ चरम पर सर्वव्याप्त थीं। धर्म के ठेकेदार महन्त पुजारी पण्डे बने हुये थे। जिन्होंने तत्कालीन समाज को कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों की गर्त में धकेला। ये ठेकेदार स्वयं चरित्रहीन ऐय्याश तथा व्यभिचारी होते थे। इन्होंने मनुष्य–मनुष्य के मध्य जाति भेद की मजबूत दीवार खड़ी कर दी थी जिससे सामाजिक एकता को गहरा आघात पहुंच रहा था। धर्म के नाम पर अछूतों का सर्वाधिक शोषण होता था।.[1]

मुख्य शब्द : कहानी, साहित्य नैतिकता, सांस्कृतिक संघर्ष अंधविश्वास।

प्रस्तावना

पराधीनता के कारण उत्पन्न बौद्धिक निष्क्रियता समाज को अंधविश्वासों के जाल में फँसाकर लक्ष्य–च्युत कर रही थी। भारतीय जन–मानस में जड़ता जड़ें जमा चुकी थी। हम जातिवाद के नाम पर अपने आप को एक लौह–दुर्ग में बंद कर चुके थे, जिसमें से न कोई बाहर निकल सकता था और न भीतर प्रवेश कर सकता था।.2 मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, पशुबलि, भूत–प्रेत, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र की मान्यता देश की प्रगति के लिए घातक सिद्ध हो रही थी। समाज विवेक शून्य होकर धार्मिक रूढ़ियों के प्रभाव में आ रहा था। देश इन विषम धार्मिक परिस्थितियों से गुजर रहा था। ऐसे में अनेक धर्म व समाज सुधार आन्दोलन हुए। आधुनिक भारत में समाजिक और धार्मिक जागृति कार्य इन्हीं आन्दोलनों के द्वारा सम्भव हुआ।

ब्रह्म समाज ने जाति को अमानवीय तथा अप्रजातांत्रिक माना। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म की संकीर्णताओं, कुरीतियों तथा अर्थहीन कर्मकाण्डों के विरूद्ध घोर संघर्ष किया। प्रेमचन्द ने आर्य समाज के धर्म को अनेकानेक विकृतियों से मुक्त कराने का श्रेय देते हुए कहा, ''अंधविश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अत्याचारों की कब्र उसने खोदी हालांकि मुर्दे उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसका जहरीला दुर्गन्ध उड़ उड़कर समाज को दूषित कर रहा हैं।''[3] इसके अतिरिक्त सन् 1893 में विवेकानन्द ने विश्वधर्म सम्मेलन में भारतीय धर्म और संस्कृति को जो मान दिलाया उससे भारतीयों में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई। भारतीय धर्म के सम्बन्ध में अंग्रेज प्रशासकों व ईसाई मिशनरियों का आक्रामक रूख था। हिन्दू धर्म में निम्न जातियाँ तिरस्कृत थीं। इसका लाभ उठाकर अंग्रेजों ने इन जातियों को प्रलोभन देकर धर्मान्तरण की ओर प्रवृत्त किया।

प्रत्येक युग संक्रमण की पीड़ा झेलता है, प्राचीन मूल्य खंडित होते हैं व उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का निर्माण होता है। प्रेमचन्द युग में भी कुछ इसी प्रकार नैतिक संघर्ष की प्रक्रिया में समाज गुजर रहा था। भारत में पूँजीवाद का अभ्युदय हो चुका था। नैतिक मूल्यों यथा – प्रेम, त्याग, सेवा, व्रत, अहिंसा, अपरिग्रह आदि का स्थान अर्थ ने लिया था। सर्वत्र अर्थवाद व्याप्त हो गया था। समाज की नैतिकता अर्थ के बोझ तले दबकर दम तोड़ने लगी थी। गाँधीजी ने इस आधुनिक सभ्यता को महान पाप घोषित किया था। प्रेमचन्द युग में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाववश, कपट, छल और प्रवंचना का प्रभुत्व हो गया था, जिससे सज्जनों का जीवन संघर्षमय हो उठा था''। नये जमाने ने मानवीय सदगुणों का मनमाना विभाजन कर दिया है। ..... नम्रता और सहिष्णुता, शर्म और हया, सदाचार और मुरब्बत इन गुणों का सब आदर करते थे, वह चाहे मुगल हो या

तुर्क, ब्राह्मण हो या शूद्र लेकिन आज हलात कुछ और हैं। ये निर्बलों के गुण हैं। नम्रता को आज निर्बलता की स्वीकृति समझ लिया गया हैं।[4]

धार्मिक और नैतिक संघर्षशील परिस्थितियों के साथ–साथ ऐसी विषम सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी विद्यमान थी जो तत्कालीन जीवन को कठिन बना रही थी। भारतीय संस्कृति अपने पुरातन स्वरूप के रक्षार्थ पाश्चात्य संस्कृति से संघर्ष कर रही थी। भौतिकता प्रधान यूरोपीय संस्कृति ने प्रेम और सेवा पर आधृत भारतीय सांस्कृतिक विरासत को हेय दृष्टि से देखा तथा उन्हें हीनता का आभास कराया।

प्रेमचन्द की कहानियों में उपर्युक्त धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रति संघर्ष विद्यमान है। भारतीय संस्कृति की नैतिक मूल्यों की रक्षा उनके पात्र पुरजोर ढंग से करते हैं।

प्रेमचन्द की धर्म के प्रति निष्ठा थी लेकिन उनकी दृष्टि में धर्म मूर्ति–पूजा या मूर्ति– दर्शन तथा पण्डे, पुरोहितों द्वारा निर्देशित विधि–विधान से नहीं, मानवतावाद में निहित था। उन्होंने हिन्दू धर्म तथा मुस्लिम धर्म दोनों के पाखण्ड व ढ़ोंग पर संत कबीर के समान प्रखर वाणी से प्रहार किया। उन्होंने धर्म की आड़ की शोषण करने वाले ब्राह्मण, पुजारी, साधु व शेख–मौलवी द्वारा निर्धारित बाह्य विधानों को देखकर धार्मिक रूढ़ियों के उच्छेदन का प्रण लिया। उन्होंने अपने कहानी–साहित्य में ब्राह्मण वर्ग की खुलकर खिल्ली उड़ाई। 'पंडित मोटेराम की डायरी' में पं. मोटेराम के मुँह से इस वर्ग की प्रवंचक व ढ़ोंगी वृति की स्वीकारोक्ति कराई हैं। ''आज इस युग में जो श्राद्ध, पिण्डदान और वर्णाश्रम में विश्वास करता हैं। जो गोबर और गोमूत्र को पवित्र समझता है, वह विद्वान कैसे हो सकता है। मैं यजमानों से यह सब कृत्य कराता हूँ। निःसन्देह मैं जानता हूँ हलवा और कलाकंद किसी आत्मा के पेट में नहीं, मेरे पेट में जाता है, फिर भी यजमानों का मूड़ता हूँ तो इसलिए कि मेरी यह जीविका है''।[5] उपर्युक्त अंश में ब्राह्मण वर्ग का पाखण्ड तथा जनता के अंधविश्वास दोनों को व्यंग्यात्मक रूप से प्रकट करके पाठक को जागृत करना चाहते हैं। 'मंत्र' कहानी में लीलाधर चौबे की कथनी–करनी में अंतर बताते हुए प्रेमचन्द ने ब्राह्मणों की तुलना में अछूतों को अधिक मानवीय मूल्यों से सम्पन्न बतलाया है। पंडित जी अछूत बस्ती का उद्धार करने हेतु मद्रास प्रांत की एक सभा में पहुँचते हैं। वे अस्पृश्य लोगों को मद्य–मांस त्यागकर सात्विक जीवन जीने का उपदेश देते हैं कि स्वच्छ एवं पवित्र जीवन–चर्या अपनाकर वे उच्च–वर्ग के हिन्दुओं के समान हो सकते हैं। सभा में उपस्थित एक वृद्ध चमार उनके दोहरेपन की कलई खोलता हुआ जो बात कहता है वह समाज में विकसित होती चेतना का सूचक हैं, ''हम कितने ही कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात–दिन नशे में डूबे रहते हैं। माँस के बिना कौर नहीं उठाते, कितने ही ऐसे है जो एक अक्षर भी नहीं पढ़े हैं पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ। उनसे विवाह सम्बन्ध करने में भी आपको कदाचित इन्कार न होगा। जब खुद अज्ञान में पड़े हुए हैं तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं। जाइये अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके किये न होगा।''.[6]

प्रेमचन्द ने धर्म के नाम पर अंधविश्वासी तथा अज्ञानग्रस्त जनता को कमण्डलधारी साधु–सन्यासियो की धूर्तता के प्रति सचेत किया है,''हिन्दू समाज में पूजने के लिए केवल एक लंगोटी बाँध लेने और देह पर राख मल लेने की जरूरत है।'' .....बाबाजी 'संसार मिथ्या है'' का उपदेश देने लगते हैं, उधर घी, शक्कर और आटे की झड़ी लग जाती हैं लकड़ियों के कुन्द गिरने लगते हैं। .... जिन लंफगों को दो आने की रोज मजूरी भी न लगती हो वे ही हिन्दुओं के इस अंधविश्वचास के कारण तर माल उड़ाते हैं, खूब नशा पीते हैं और मौज उड़ाते हैं।''.[7] प्रेमचन्द ने कई कहानियों में इन प्रवंचकों को समाज के समक्ष लाकर खड़ा किया है ताकि अंधविश्वासी जनता बाबाओं के कपट जाल में न आये। ''नेउर'' कहानी में एक ऐसा ही ढोंगी बाबा गाँव में पहुँचता है। सारा गाँव श्रद्धा से नतमस्तक होकर उनकी सेवा में संलग्न हो जाता हैं। नेउर भी इनकें पास धन प्राप्ति की आशा से जाता है। बाबा उसे घर के समस्त गहने, जमा–पूँजी आदि धूनी में दबाकर इस प्रत्याशा में घर लौटा देते हैं कि प्रातः काल उसे धन द्विगुणित मात्रा में प्राप्त होगा। नेउर सुबह बाबाजी के डेरे पर पहुँच कर देखता है कि बाबा उसकी जमा–जत्था लेकर चम्पत हो गये। इसी प्रकार 'शूद्रा' कहानी में मृत पति की आत्मा से मिलन की आशा में एक स्त्री धूर्त बाबा के चुंगल में फँस जाती है। भारतीय ग्रामीण समाज आज भी अज्ञान और अँधकार में पुंज हैं। धर्म के नाम पर भाग्यवाद, कर्मकाण्ड और ब्राह्मणवाद को बोलबाला हैं। प्रेमचंद के समय में यह स्थिति और भयावह थी। ब्राह्मण, पुरोहित वर्ग ने अपने स्वार्थ हेतु स्वर्ग–नरक की परिकल्पना लोगों के समक्ष प्रस्तुत की तथा उसी के नाम पर शोषण करते रहते थे। 'सवा सेर गेहूँ, 'मुक्तिमार्ग', नैराश्यलीला' धार्मिक कर्मकाण्डों की वास्तविकताओं को प्रकट करती हैं। धर्म व धार्मिक पाखण्डों ने स्त्री को और भी अधिक पराधीन बना दिया। पति को भी ईश्वर का दर्जा देकर उसे कुंठित बनाया। इस गलत रूढ़ि के विरूद्ध 'कानूनी कुमार' की मिसेज बोस रोष प्रकट करती हुई कहती हैं ''मुझे धर्म के नाम मात्र से घृणा होती हैं। इसी धर्म ने स्त्री को पुरुष की दासी बना दिया है। मेरा बस चले तो मैं सारे धर्म की पोथियों का उठाकर परनाले में फैंक दूँ।''.[8]

भारत की धर्मभीरु जनता प्रायः मनोवांछित फल पाने के लिए ईश्वर से मनौती माँगा करती है और उसके पूर्ण होने पर ब्राह्मणों में दान–दक्षिणा, भोज आदि दिये जाते हैं। प्रेमचन्द इसे ईश्वर को दी जाने वाली रिश्वत का ही रूप कहते हैं। 'बासी भात में खुदा का साझा' में प्रेमचंद की तार्किक तथा वैज्ञानिक विचारधारा, दृष्टिगोचर होती है। इस कहानी में माया अपने बीमार पति की मंगल कामना हेतु ईश्वर से मनौती मांगती है कि पति के ठीक होने पर वह ब्राह्मणों को भोजन करायेगी। संयोग से दीनानाथ ठीक हो जाते हैं। वे अपने स्वास्थ्य लाभ को किसी ईश्वर की अनुकम्पा नहीं समझते है। पत्नी के ढ़ोंग पर आपत्ति करते हुए कहते हैं, ''भगवान जितना दयालु है, उससे असंख्य गुना निर्दय है और ऐसे भगवान की

कल्पना से भी मुझे घृणा होती है, ... तुम्हारा ईश्वर दण्ड भय से सृष्टि का संचालन करता है। .....हम जैसों को तो ईश्वर की दया कहीं नजर नहीं आती। हाँ, भय पग–पग पर खड़ा घूरा करता है। यह मत करो, नही तो ईश्वर दण्ड देगा। आतंक से शासन करना बर्बरता है। आतंकवादी ईश्वर से ईश्वर का न रहना ही अच्छा है।''.[9] मानव जीवन को विभाजन करने वाले, भयग्रस्त करने वाले तथाकथित धर्म के बाह्य स्वरूप का प्रेमचन्द के कथा साहित्य में यत्र–तत्र विरोध विद्यमान है। वे चाहते थे कि लोग इसका घृणित पक्ष समझ कर सड़ी–गली मान्यताओं, रूढ़ियों का त्याग कर स्वस्थ–जीवन मूल्यों का निर्माण करें तथा राष्ट्र की प्रगति में समुचित योगदान दें।

महान विचारकों की भाँति प्रेमचंद के जीवन–दर्शन का मूल तत्व है – मानवतावाद। यद्यपि उनके साहित्य कोष में जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सभी पक्ष यथोचित रूप से विद्यमान हैं, परन्तु इन सभी पक्षों का सम्मिलन मानवतावाद में हो जाता है। वे चाहे सामाजिक संघर्ष का मार्ग सुझायें, चाहे शोषण के विरूद्ध आक्रोश प्रकट करें, सबके मूल में प्रदीप्त मानवीयता का ही भाव विद्यमान है। उनके विषय में सत्य है,'' वे मानव मात्र की मनोभूमि को निर्मल, स्वच्छ और प्रशांत बनाकर उसे प्रेम, पूजा, पुण्य तथा पवित्रता से संवलित कर देना चाहते थे। वे साधारण से साधारण मानव आत्मा को उदात्त बनाते समय उसमें सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् की प्रतिष्ठा करने के लिए समुत्सुक हैं।[10]

'गिला', 'जुगनू' की 'चमक', 'बहिष्कार', 'मंत्र', 'बालक', 'पंच परमेश्वर', 'अनाथ लड़की' आदि कहानियाँ उच्च नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती हैं, मानवता का सन्देश देती हैं। 'गिला' कहानी का नायक अत्यन्त उदार तथा संवेदनशील व्यक्ति है। यद्यपि उसके पास आय के सीमित साधन हैं। जिससे उसकी तथा उसके परिवार की न्यूनतम आवश्यकताऐं ही पूर्ण हो पाती हैं। वह एक निर्धन मेहतर को ठंड से ठिठुरता देख अपना एकमात्र गरम कोट उसे दे देता है। उसके हृदय में क्षण भर के लिए भी यह विचार नहीं आता कि शीत से वह स्वयं अपनी रक्षा कैसे करेगा? 'बहिष्कार' कहानी का नायक शरणागत स्त्री की रखा करता है। इस कारण समाज उन्हें बहिष्कृत कर देता है, रोजी–रोटी के साधन बंद हो जाते हैं। ''जब तक गोविन्दी के पास गहने थे, तब तक भोजन की कोई चिन्ता नहीं थी, किन्तु जब यह आधार भी न रह गया तो हालात और भी खराब हो गई। कभी–कभी निराहार रह जाना पड़ता। अपनी व्यथा किससे कहें?''.[11] मानवीय मूल्यों की रक्षार्थ 'बहिष्कार' में गोविन्दी और ज्ञानचन्द असहाय स्त्री की रक्षार्थ वे जीवन में आने संघर्षों का सामना करते हैं। 'जुगनू की चमक' कहानी शरणागत वत्सलता के आदर्श को प्रतिष्ठित करती है।

मनुष्य को क्षुद्रताओं से ऊपर उठाना, उसे चारों ओर के अंधकार से बचाकर त्याग, सेवा, परोपकार जैसे मानवतावादी नैतिक मूल्यों की ओर अग्रसर करना ही उनका लक्ष्य था। जिसमें वे सफल भी हुए। 'मंत्र' कहानी का बूढ़ा भगत निष्काम भावना से युक्त आदर्श पात्र हैं। वह एक सीधा साधा ग्रामीण है जिसके पुत्र की मृत्यु डॉ. चड्ढा की अमानवीय क्रूरता के कारण हो जाती है। कुछ वर्षों के बाद इन्हीं चड्ढा के पुत्र को विषैला सर्प काट लेता है। डॉक्टर, वैद्य सभी विष का प्रभाव समाप्त नहीं कर सके। यह समाचार भगत तक पहुँचता है। उसका चेतन इस दुराशा से प्रसन्न होता है कि डॉक्टर को अब मालूम होगा कि लड़के के प्राणांत पर माता–पिता के हृदय पर कितनी चोट पहुँचती है। परन्तु तत्क्षण उसका अर्न्तमन धिक्कारता है कि उसने अस्सी वर्षों के जीवन में किसी को भी सर्पदंश से मरने नहीं दिया तो वो इस बच्चे को कैसे मरने दे सकता है और मानवता के आलोक से उसका हृदय प्रकाशित हो उठा है। कँपकपाती रात्रि में वह चड्ढा के घर के लिए निकल पड़ता है।

यह समाज उस स्त्री के प्रति बर्बरता की सीमा तक कठोर है जिसका कई पुरूषों से सम्बन्ध है। प्रेमचन्द 'बालक' कहानी में शारीरिक पवित्रता के मापदण्ड के स्थान पर हार्दिक निर्बलता के आदर्श को प्रतिष्ठित करते हैं। इसमें गंगू नामक ब्राह्मण विधवाश्रम से निकाली हुई कुलटा स्त्री गोमती से विवाह करके समाज की तथाकथित नैतिकता पर प्रहार करता है। गंगू समाज में होने वाले अपयश का ध्यान न देकर उसके बच्चे के निर्वहन का दायित्व उठाता है जिसका पिता कोई और है। गंगू का निम्न कथन किसी भी कलुषित आत्मा को प्रदीप्त करने के लिए पर्याप्त है – ''मैंने तुमसे विवाह इसलिए नहीं किया कि तुम देवी हो बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हे चाहता हूँ और सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा है, मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया है तो उसकी फसल को इसलिए छोड़ दूंगा कि उसे किसी दूसरे ने बोया था।''[12]

प्रेमचन्द मुनष्य को सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर आदर्श मनुष्य के रूप में प्रस्थापित करना चाहते थे। उन्होंने लिखा है कि, ''मानव स्वभाव देवतुल्य है। जमाने में छल–प्रपंच और परस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है।''.[13] उनका दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य में त्याग, तप, सेवा, परोपकार, क्षमा, दया, सौन्दर्य–भावना जैसे सद्गुण विद्यमान रहते हैं। उनकी कहानियों के चरित्र की इन्हीं आदर्शो से संकलित हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रेमचन्द परम्परा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रणः डॉ. राजेन्द प्रसाद शर्मा, पृ.126*
2. *हिन्दुस्तान की कहानीः पं. जवाहरलाल नेहरु, अनुवादकः रामचन्द, पृ.69*
3. *साहित्य का उद्धेश्यः प्रेमचन्द, पृ. 110*
4. *प्रेमचन्द के विचार – 3, पृ. 399*
5. *पंडित मोटेराम की डायरी, पृ.128*
6. *मानसरोवर–5, मंत्र, पृ. 128*
7. *कलम का सिपाहीः अमृतराय, पृ.552*
8. *मानसरोवर–2, कानूनी कुमार, पृ.183*
9. *मानसरोवर–2, बासी भात में खुदा का साझा, पृ. 126*
10. *हिन्दी उपन्यास में मानववादः डॉ. रणवीर सिंह, पृ. 9*
11. *मानसरोवर–5, बहिष्कार, पृ. 63*
12. *मानसरोवर भाग–2, बालक, पृ. 138*
13. *साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचन्द, पृ. 22*